क्या बढ़ता हुआ संरक्षणवाद वैश्वीकरण के अंत का सूचक है?

“हर तरफ देखो जिधर, बाज़ार ही बाज़ार है,

ख्वाहिशों का दूर तक फैला हुआ संसार है।

खुशबुओं के सर कलम, बेरंग हैं सब तितलियाँ,

बाग में आया हुआ ये कौन सा त्यौहार है।।“

कितनी खूबसूरती से ये पंक्तियाँ वैश्वीकरण व उदारीकरण का वर्णन कर रही हैं। हालाँकि, हाल के कुछ समय से विश्व की तस्वीर कुछ और ही बयाँ कर रही है। अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव हुए हैं और डोनाल्ड ट्रंप के राष्ट्रपति बनने के साथ ही वहाँ की तितलियाँ त्यौहार मना रहीं हैं और बाज़ार बेरंग हैं। केवल अमेरिका ही नहीं, यूरोप, दक्षिण अमेरिका सहित विश्व के अधिकांश देशों में दक्षिणपंथी सरकारों का आना वैश्वीकरण के भविष्य पर संदेह व्यक्त कर रहा है। इसी के साथ जो देश वैश्वीकरण के दौर में अब खड़े हो पाए हैं, उनमें इस प्रकार की बढ़ती संरक्षणवादी नीतियों को लेकर खासी चिंता व्याप्त है। भारत, चीन जैसे विकासशील देशों ने तो वैश्वीकरण का लुत्फ उठाना शुरू ही किया था कि विकसित देश अपने-अपने हितों की पहरेदारी की योजना बनाने लगे। आखिर क्या वजह है जिसने वैश्वीकरण के जन्मदाताओं के मन में भय उत्पन्न कर दिया है? आखिर क्यों एक के बाद एक देश संरक्षणवाद को प्रोत्साहन दे रहें हैं? क्या ये कदम वैश्वीकरण के अंत की ओर इशारा कर रहे है या फिर वैश्वीकरण की इस मशाल को विकासशील देश जलाए रखेंगे?

आज जो संरक्षणवाद वैश्वीकरण के लिये खतरा बना हुआ है, कहीं न कहीं यह संरक्षणवाद भी वैश्वीकरण की ही देन है। पहले का ग्राम समाज आत्मनिर्भर हुआ करता था। जितनी आवश्यकता होती थी, उतना ही उत्पादन किया जाता था। न ही आज जैसा भव्य बाज़ार हुआ करता था और न ही उसके संरक्षण की कोई आवश्यकता थी। यूरोप में औद्योगिक क्रांति हुई, फलस्वरूप अतिरिक्त उत्पादन ने बाज़ार की आवश्यकता को जन्म दिया। औद्योगिक क्रांति वाले देशों को अपना माल खपाना था। अतः इन देशों के पूंजीपति वर्ग ने उन देशों की ओर रुख किया, जहाँ बड़ा बाज़ार संभावित था। बाज़ार की इसी आवश्यकता के कारण ही विश्व को उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का दंश भी झेलना पड़ा। अविकसित देशों के संसाधनों को हड़पकर, उनकी श्रम शक्ति का लाभ उठाकर तथा उनके बाज़ार पर कब्जा करके ये साम्राज्यवादी देश विकास की दौड़ में कहीं आगे निकल आए। अब बाज़ार का संकट तब उत्पन्न हुआ जब ये उपनिवेशिक देश आजाद हो गये।

उपनिवेशवाद का अंत भले ही हो गया हो, परन्तु अभी भी इन पश्चिमी देशों को बाज़ार की आवाश्यकता तो थी ही। अब सीधे तौर पर किसी अन्य देश के बाज़ार पर कब्जा करना सम्भव नहीं था। अब बाज़ार की मांग एक ही तरह से पूरी हो सकती थी, यदि पूरे विश्व को एक ही बाज़ार में तब्दील कर दिया जाए। अतः विकसित देशों ने विकासशील देशों के दरवाज़े खटखटाने शुरू किये। इधर नवस्वतंत्र विकासशील देश अभी सीधे खड़े भी नहीं हो पाए थे, तो वे कैसे अपने बाज़ार इनके लिये खोल देते? इसी वैश्वीकरण से बचने के लिये विकासशील देशों ने संरक्षणवादी नीति अपनाई। लाइसेंस-परमिट-कोटा द्वारा अपने नवजात उद्योगों, व्यापारियों व किसानों आदि को संरक्षण दिया।

भारत ने भी इसी नीति का अनुसरण किया, पर जल्दी ही इन देशों पर अपने बाज़ार को खोलने का बाह्य व आंतरिक दबाव बढ़ने लगा। एक ओर ये पश्चिमी देश, विकासशील देशों की गर्दन पकड़कर उन्हें वैश्वीकरण के लाभ गिना रहे थे, वहीं दूसरी ओर इनकी स्वयं की अर्थव्यवस्थाएँ चरमरा रही थीं। इस स्थिति को दुष्यंत कुमार की ये पंक्तियाँ बड़ी खूबसूरती से बयाँ करती हैं-

फलस्वरूप विकासशील देशों को अपने बाज़ार खोलने पड़े और सम्पूर्ण विश्व में वैश्वीकरण की लहर दौड़ गई। हालाँकि, विकसित देश वैश्वीकरण के पक्ष में इसलिये थे क्योंकि इससे उन्हें अधिकतम लाभ व न्यूनतम हानि थी। ये देश विकासगाथा में अपने साथ के देशों से 100-200 वर्ष आगे थे। विज्ञान-तकनीक में कोई विकासशील देश इनका सानी नहीं था। इनके उत्पादों की गुणवत्ता इतनी बेहतर थी कि विकासशील देशों के उत्पादों से इनके बाज़ार को कोई खतरा न था। विश्व बाज़ार की नीतियाँ व मानक भी यही तैयार कर रहे थे। अपनी देशी भाषा में कहें तो वैश्वीकरण अपनाने से विकसित देशों की चारों उँगलियाँ घी में और सिर कढ़ाही में था।

और ऐसा भी नहीं था कि अपना बाज़ार खोलने से विकासशील देशों को सिर्फ नुकसान ही था। वैश्वीकरण ने प्रतिस्पर्द्धा को जन्म दिया, विकास करने की प्रेरणा दी। लोगों को गुणवत्तापूर्ण जीवन स्तर उपलब्ध कराया। कृषि, उद्योग, विज्ञान-तकनीक आदि सभी क्षेत्रों में विकास किया। श्रमिकों को अपने देश के साथ-साथ अन्य देशों में भी रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए। विकासशील देश वैश्वीकरण के द्वारा विकसित देशों की उंगली पकड़कर चलना सीख रहे थे। भारत व चीन जैसे देश तो विश्व अर्थव्यवस्था के दो चमकते सितारे बन गए। यह वो समय था जब वैश्वीकरण की लहर दुनिया भर में तेज़ी से दौड़नी शुरू हो गई थी। विकासशील देश विकसित देशों के साथ वार्ता में एक मंच पर आने वाले थे। ट्रांस पैसिफिक पार्टनरशिप, ट्रांस अटलांटिक पार्टनरशिप जैसे समझौते, विश्व व्यापार संगठन का ट्रेड फैसिलिटेशन एग्रीमेंट और ऐसे ही अनेक द्विपक्षीय व क्षेत्रीय मुक्त व्यापार समझौतों द्वारा वैश्वीकरण अपने चरम रूप में सामने आने ही वाला था। लेकिन समय ने करवट बदली, और अब विश्व कुछ अप्रत्याशित एवं निराशाजनक घटनाओं का सामना कर रहा है। आज विश्व में वैश्वीकरण

के अग्रदूत देशों में उग्र राष्ट्रवादी राजनीतिक विचारधारा लोकप्रिय हो रही है।

जर्मनी की चांसलर एंजेला मार्कल अपनी नरम शरणार्थी नीति के कारण उग्र दक्षिणापंथी पार्टी ए.एफ.डी. से हार गईं। फ्रांस के राज्यों के चुनाव में भी दक्षिणपंथी विचारधारा वाली पार्टी नेशनल फ्रंट सत्ता में आई। पोलैंड में भी पिछले वर्ष कट्टर दक्षिणपंथी पार्टी सत्ता में आई। स्विट्ज़रलैंड में भी कट्टर राष्ट्रवादी पार्टी चुनाव जीती है। अमेरिका में भी घोर राष्ट्रवादी डोनाल्ड ट्रंप राष्ट्रपति चुनाव जीते हैं। अपने इसी दक्षिणपंथी रवैये के चलते ब्रिटेन ने यूरोपीय यूनियन से अलग होने का फैसला लिया। एक के बाद एक पूरा पश्चिमी विश्व राष्ट्रवाद की गिरफ्त में आता जा रहा है।

यह वाकई चौंका देने वाला परिदृश्य है कि विश्व के जो देश वैश्वीकरण का नारा बुलंद करते आए हैं, वे स्वयं ही आज संरक्षणवादी नीतियाँ अपना रहे हैं। आज हमें अमेरिका जैसे देश में 'ग्लोबल विलेज' की जगह 'बाय अमेरिकन हायर अमेरिकन' जैसे नारे सुनने को मिल रहे हैं। इसका कारण यह है कि अब इन देशों को अपने द्वारा गढ़ी सुनहरी तस्वीर का स्याह पक्ष नज़र आने लगा है।

लेकिन इसका स्याह पक्ष ये है कि आज भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता डगमगाने लगी है। पर्यावरण, व्यापार जैसे मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय संधियों ने देशों की संप्रभुता को कमज़ोर किया है। हाल के वर्षों में विभिन्न राष्ट्रों की परस्पर निर्भरता में व्यापक वृद्धि हुई है, स्थिति ये है कि आज कोई भी देश पूर्णतः आत्मनिर्भर होने का दावा नहीं कर सकता। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमन हेतु सभी देशों को विश्व व्यापार संगठन के नियमों को मानना पड़ता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक व बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ राष्ट्रों की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करती हैं। यूरोपीय यूनियन जैसे आर्थिक संगठन बने हैं, इसमें शामिल देशों को अपने देश की आर्थिक नीतियों के निर्धारण का अधिकार भी संघ (यूरोपीय यूनियन) को सौंपना पड़ा है। इससे देशों की आर्थिक संप्रभुता को व्यापक क्षति पहुँची है। यही क्षति कुछ-कुछ राजनीतिक संप्रभुता को भी पहुँची है। भले ही संयुक्त राष्ट्र एक वैश्विक सरकार बनाने जितना मज़बूत न हो पाया है, परंतु समस्त देश कुछ नियमों एवं परम्पराओं को स्थापित करने व उनका अनुपालन करने के लिये इस मंच का प्रयोग करते हैं। आज दुनिया में परिवहन, संचार का व्यापक प्रसार हुआ है। सोशल मीडिया द्वारा विभिन्न देशों के लोग आपस में जुड़े हैं। देश-दुनिया में सूचना का प्रसार कुछ क्षणों में ही हो जाता है। लोग दूसरे देशों की संस्कृतियों के संपर्क में आर रहे हैं। इस सांस्कृतिक मेलमिलाप को अपनी संस्कृति पर खतरे के रूप में देखा जा रहा है। लोगों को लगता है कि भूमण्डलीकरण से उनकी सांस्कृतिक संप्रभुता कमज़ोर हुई है। इन विद्वेषों को हंटिंगटन ने अपनी किताब 'सभ्यताओं के संघर्ष' में समझाया है।

न केवल संप्रभुता बल्कि अन्य कारण भी हैं जो वैश्वीकरण को कटघरे में खड़ा करते हैं। अर्थव्यवस्थाएँ परस्पर जुड़ी हैं तो साथ में उनकी परनिर्भरता भी बढ़ती गई। आज किसी एक देश की आर्थिक मंदी पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले लेती है। केवल माल की ही नहीं श्रमिकों की भी आवाजाही शुरू हुई, जिसके कारण विकसित देशों को बड़ी संख्या में प्रवासी श्रमिक प्राप्त हुए। संयुक्त राष्ट्र की हाल की एक रिपोर्ट के मुताबिक, विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 3% प्रवासी हैं, जिनमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। बड़ी संख्या में प्रवासी श्रमिक आने से वहाँ के मूल श्रमिक बेरोज़गार होने लगे और आर्थिक असमानता उत्पन्न हुई। इसी के साथ वैश्विक संस्थाओं में जैसे-जैसे विकासशील देशों का कद बढ़ने लगा, विकसित देशों पर दबाब आने लगा।

देखा जाए तो केवल बाज़ार ही वैश्वीकृत नहीं हुआ, आतंकवाद का भी वैश्वीकरण हुआ है। फ्रांस जैसे शांत देश में दो आंतकी घटनाओं ने पूरे पश्चिमी विश्व को सोचने को मजबूर कर दिया। इन सबसे बड़ी समस्या है- शरणार्थियों की, मध्य-पूर्व से बड़ी तादात में शरणार्थी यूरोपीय देशों में प्रवेश कर रहे हैं। शरणार्थी समस्या के लिये तो कहना ही होगा कि 'जब बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से पाए'। अपने हित साधने के लिये पश्चिमी देशों ने मध्य-पूर्व को बर्बाद तो कर दिया, अब जब बड़ी संख्या में शरणार्थी प्रवेश कर रहे हैं तो समस्या उत्पन्न हो रही है। यही कुछ कारण हैं जो उदारवादी विचारधारा को भी घोर दक्षिणपंथी बना रहे हैं।

पर इन सबके लिये कौन ज़िम्मेदार है? प्रसिद्ध दार्शनिक रोल्स अपने "न्याय के सिद्धांत" में कहते हैं कि यदि कोई नीति निष्पक्ष होकर बनाई जाए तो वही न्याय है। पश्चिमी देशों की वैश्वीकरण की नीति निष्पक्ष नहीं थी बल्कि उनकी अपनी ओर झुकी हुई थी। जैसे ही अन्य देशों का पलड़ा भारी हुआ, पश्चिमी देश डगमगाने लगे। इसे में उचित तो यह होता कि पहिले ही ये देश अपने को विकासशील देशों की जगह रखकर वैश्वीकरण की नीति का खाका खीचते। तब लाभ भले ही कम होता, पर संतुलित होता और विश्व को आज संप्रभुता पर खतरा, आतंकवाद, बेरोज़गारी और असमानता जैसी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता।

हर समाज व राष्ट्र की कोई स्थायी विचारधारा नहीं होती। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और विकास का सूचक भी है। यदि विश्व विचारधारा में कोई परिवर्तन आ भी रहा है तो हम आशा कर सकते हैं कि यह भी मानवजाति की भलाई के लिये ही होगा। और जहाँ तक वैश्वीकरण के भविष्य का सवाल है तो आज विश्व के सभी देश आपस में इस कदर गुंथ चुके हैं कि अब पूर्णतः आत्मनिर्भर हो पाना संभव नहीं है। जिस तरह समुद्र में मिली नदियों को अलग नहीं किया जा सकता, उसी तरह अब देशों को विश्व से अलग नहीं किया जा सकता; बल्कि पर्यावरण, आतंकवाद जैसे कुछ मुद्दे ऐसे हैं, जिनमें समाधान के लिये पूरे विश्व को एकजुट होने की आवश्यकता है। भले ही पश्चिमी देश वैश्वीकरण से अपने पाँव खीच रहे हों पर अब दूसरी पीड़ी वैश्वीकरण का आनंद लेगी। अब एशिया वैश्वीकरण का केंद्र होगा और विकास की एक और कहानी लिखी जाएगी। परन्तु विश्व ग्राम का सपना तभी साकार हो सकेगा जब वैश्वीकरण की नई नीति संतुलित हो और सबको साथ लेकर चले।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/increasing-protectionism-is-an-indicator-of-the-end-of-globalization